मोहन राकेश का साहित्यिक चिन्तन : नाटक के सन्दर्भ में

डॉ0 शीला चन्देल
हिन्दी
सहायक प्राध्यापक ¼हिन्दी
राजकीय कन्या महाविद्यालय,शिमला, हि0प्र0।

भूमिकाः साहित्य और साहित्यिक चिन्तन

'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए 'हिन्दी साहित्य कोश' के रचयिताओं ने लिखा है–''साहित्यः सहित +यत् प्रत्यय, साहित्य का अर्थ है। शब्द और अर्थ का यथावत् सहभाव अर्थात साथ होना''। इस प्रकार सार्थक शब्द मात्र का नाम साहित्य है।

'साहित्य' शब्द की व्युत्पति का रहस्य जानने के लिये इतिहास को जानना बहुत जरूरी है। 'साहित्य' शब्द का प्रचलन इस वर्ष में सातवीं आठवीं शताब्दी में हुआ था। इससे पहले संस्कृत में 'साहित्य' के स्थान पर 'काव्य' शब्द का ही प्रयोग मिलता है। भामह, राजशेखर, कुन्तक जैसे आचार्यों ने काव्य की परिभाषा करते हुए शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य बताया तथा इसी प्रसंग में उन्होंने सहिता, सहभाव आदि का उल्लेख किया। लेकिन आगे चलकर 'शब्द और अर्थ के सहभाव' ¼साहित्य) के स्थान पर केवल सहभाव ¼साहित्य) ही रह जाता है। च

साहित्य के मुख्यतः चार तत्व निर्धारित किये गये हैं– भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली। साहित्य का मुख्य तत्व 'भाव' ही है। यही उसकी आत्मा है। साहित्य का प्रमुख लक्षण रागात्मकता होने के लिए भावों का चित्रण कल्पना शक्ति के प्रयोग के द्वारा ही सम्पन्न होता है। एक साधारण घटना को भी कवि 'कल्पना' के रंग में रंगकर भव्य रूप प्रदान करता है। साहित्य में 'बुद्धि' तत्व का सम्बन्ध तथ्यों, विचारों और सिद्धान्तों से है। साहित्य में किसी न किसी रूप में विचारों, तथ्यों और सिद्धान्तों का भी समावेश किया जाता है। इसके अभाव में साहित्य कोरी भावनाओं का चीत्कार बन जाएगा। कवि या साहित्यकार जिस भाषा, जिस ढंग से अपने भावों विचारों को व्यक्त करता है, वही 'शैली' है।

साहित्य चिन्तन

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। जब से मनुष्य का जन्म हुआ, वह अनेक विषयों पर विचार करता आया है। मानव की प्रारम्भिक अवस्था पशु–तुल्य थी, चिन्तन ने उसकी पशुवृत्ति को धीरे–धीरे क्षीण करके उदारवृति का पोषण और विकास किया।

उसके हृदय की कला को व बुद्धि के अनेक विषयों को जागृत किया। पशुओं का मांस खाकर ही मनुष्य तृप्त नहीं हुआ, बल्कि उनके मांस से ¼peM+s ls) बाघ बनाना भी उसने सीखा।शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् वह हृदय और बुद्धि की बातें भी सोचने लगा। इसी से काव्य, साहित्य व दर्शन का जन्म हुआ।

मोहन राकेश का साहित्यिक चिन्तन : नाटक के सन्दर्भ में

मानव की अन्तः यात्रा और वाह्य संघर्ष जिस परिवेश में घटित होते हैं, उसी से मानव की अनुभूति, कल्पना और चिन्तन को निरन्तर गति प्राप्त होती है। परिवेश और मानवीय जीवन संघर्ष के समानान्तर क्रम की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। साहित्य स्रष्टा जहां एक ओर परिवेश के परम्परित मूल्यों का अन्वेषण करता है, वहीं दूसरी ओर परिवर्तित युग बोध के अनुसार उन्हें नया संस्कार भी देना होता है। वे दोनों अन्तः संस्कार ही उसकी भाव–भूमि को निर्मित करते हैं।

हिन्दी नाटक भारतेन्दु युग में ही अपनी लक्ष्मण रेखा से निकला। बाद में जिस साहित्य दौर ने हिन्दी नाटक को समकालीन परिस्थितियों से जोड़ा, वह यथार्थवाद ही है। इस दिशा में अनेक नाटककार

सामने आए और उन नाटककारों में मोहन राकेश ऐसे कलाकार हैं, जिन्हें नए नाटक की पहल करने का श्रेय प्राप्त है।

मोहन राकेश ने जिस युग में अपनी साहित्य साधना प्रारम्भ की थी, उस युग में प्राचीन मान्यताएँ बड़ी तीव्रता से बदल रहीं थी। यह युग नवोन्मेष का युग था इसी कारण उन्होंने अपने साहित्य में नवयुग की संस्कृति, सभ्यता, सांस्कृतिक चेतनाओं आदि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

मोहन राकेश ने गद्य साहित्य की सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई, लेकिन प्रसिद्धि उन्हें नाटककार के रूप में प्राप्त हुई। उन्होंने हिन्दी नाटक को एक नयी जमीन पर खड़ा किया। मोहन राकेश ने यह सिद्ध कर दिया कि नाटककार के रूप में वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जो स्वयं अपने सब चरित्रों का अभिनय कर सके।

श्रेष्ठ कलाकार वही व्यक्ति हो सकता है जो कार्य से अधिक कारण को महत्व देता है। जो वर्तमान को समझने के लिये अपने अतीत का ठीक–ठीक विश्लेषण कर सकता है और भविष्य को दिशा देने के लिए वर्तमान की दिशा दृष्टि का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकता है।

मोहन राकेश के नाटक केवल हिन्दी के नाटक ही नहीं, बल्कि समकालीन भारतीय नाट्य प्रवृतियों के द्योतक भी है। इन्होंने यद्यपि चार नाटक लिखे हैं, तथापि जिन्दगी की सच्चाइयों से साक्षात्कार करने वाले ये नाटकीय प्रसंग बोध और संवेदना के स्तर पर युग यथार्थ के नाटक है।

राकेश के नाटक हिन्दी नाट्य परम्परा में आधुनिकता की शुरूआत करते हैं। उन्होंने यथार्थ के तीखे रूप के साथ–साथ नाट्य अनुभूतियों का जीवन्त रूप भी प्रस्तुत किया है। कथ्य, शिल्प और भाषा का रूप नाट्य परम्परा में नवीनता लिए हुए हैं। राकेश का नाट्य चिन्तन क्रमशः इस प्रकार है–

नाटक साहित्य में युग परिवेश

रचना की प्रासंगिकता जीवन सन्दर्भों से जुड़े रहना ही है। जो रचना हमारे जीवन के जितनी अधिक निकट है, वह उतनी ही अधिक प्रासंगिक है। जीवन से जुड़े रहने का अर्थ जीवन की सम–विषयक स्थितियों की स्वीकृति ही नहीं, उनसे टकराना ओर जूझना भी है। अपने आस–पास के दायरे को तोड़ना या तोड़ने की प्रक्रिया में स्वयं उनसे कट जाना, क्योंकि रचना की सार्थकता इसी में है कि इससे दायरे की मानसिक अपेक्षाओं की पूर्ति कहां तक होती है।

मोहन राकेश का समस्त रचना संसार समसाक्षयिक युग चेतना से सम्पन्न है। इन्होंने धर्म, परम्परा, वैज्ञानिक तर्क बुद्धि तथा मानव जाति के विकासशील ऐतिहासिक बोध को वैयक्तिक तथा सामाजिक आदर्शों व मूल्यों के निकष रूप में स्वीकार किया है। उनकी समस्त अनुभूति परिवेश से जुड़े रहने की अनिवार्य अनुभूति है।

आदमी के अस्तित्व संकट में आज युग परिवेश का बड़ा हाथ है। जीवन सत्य है और जीवन का सत्य इस बात में है कि व्यक्ति जाने अनजाने में मिले परिवेश में ही रहता है। इस आत्मपरक स्थिति और परिवेश की स्वीकृति, इन दोनों आयामों पर ही मनुष्य का जीवन निर्भर करता है। मनुष्य जीवन नहीं, मनुष्य और परिवेश का सम्बन्ध ही समस्या और संकट को जन्म देता है। राकेश के नाटक इसी द्वन्द्व में जन्म लेते हैं।

आज के युग में व्यक्ति पर सामूहिक परिवेश का बहुत दबाव है। समूह, संगठन, व्यवस्था सब व्यक्ति पर हावी होने के कारण उसकी वैयक्तिकता के लिए खतरा हो गया है। राकेश के नाटक व्यक्ति को समूह की इसी भूमिका के विरूद्ध स्थापित करते हैं किन्तु व्यक्ति परिवेश के नीचे दबा महसूस होता है। 'लहरों के राजहंस' में नन्द और सुन्दरी समूह करते हैं, जब कोई अतिथि कामोत्सव में उपस्थित नहीं होता।

'आषाढ़ का एक दिन' में ग्रामीण समाज का सारा सत्य कालिदास के विरूद्ध है और उज्जयिनी में जाकर तो पीरवेश ही उसकी विनाशकारी स्थिति का कारण बनता है। सिर्फ व्यक्ति और समाज की ही नहीं, व्यक्ति का निजी सम्बन्ध भी एक परिवेश का निर्माण करता है।

राकेश के नाटकों का जीवित संसार उन्हीं व्यक्तियों का है जो परिस्थितियों से घिरे हुए हैं और उनकी टकराहट में आने से टूट जाते है। 'आषाढ़ का एक दिन' नाटक में राकेश ने कालिदास के माध्यम से व्यक्ति और राज्य की आपसी टकराहट को व्यक्त किया है। कालिदास के सामने राज्य द्वारा दिये गय सम्मान और राज्यकाय को स्वीकार करने का प्रश्न नहीं, बल्कि प्रश्न स्वतन्त्रता, व्यक्तित्व और अधिकार का

है–''मैं राजकीय मुद्राओं से क्रीत होने के लिए नहीं हूं।'' यह पंक्ति उसके स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की गहरी इच्छा को ही प्रकट करता है।

परिवेश में रहकर टूटना या बिखरना ही जीवन के लिए काफी नहीं होता। जीवन में एक स्थिति मोहभंग की भी है। इन समस्त परिस्थितियों के बीच जूझता हुआ आदमी कभी–कभी विभाजित भी हो जाता है। राकेश के पात्र इस स्थिति में कभी अपने आप को जोड़ते हैं कभी तोड़ते हैं। उन्हें कोई भी जिन्दगी रास नहीं आती; न कवि की न राज्याश्रय की, न सुन्दरी का भोग ही उन्हें तुष्ट करता है। यह नियति उन्हें उस विद्रोह में खड़ा करती है, जो राकेश के नाटकों का केन्द्रीय तत्व है।

वास्तव में मोहन राकेश में आज के व्यक्ति को आन्तरिक पीड़ा, अकुलाहट से सुरक्षित रखने की ललक थी। इसे आत्मसात कर उन्होंने व्यक्ति, घटना और परिस्थितियों को एक व्यापक सन्दर्भ में देखा और पहचाना है। सबके द्वन्द्व और अर्न्तद्वन्द्वों का यथार्थ वर्णन किया है। राज्याश्रय के लिए उदासीन कालिदास गुप्त राज्य की ओर से कश्मीर का शासन भार सम्भालने के लिए जाने वाला मातृगुप्त और सत्ता प्रभुता के मोह से मुक्त राजकीय वस्त्रों में क्षत–विक्षत कालिदास की मनःस्थिति का विमोचन इस अर्न्तद्वन्द्वों को संकेतित करने के लिए ही है। यह द्वन्द्व कालिदास का ही नहीं, आज के सन्दर्भों से जुड़ी सृजनशील प्रतिभा का है।

मोहन राकेश ने अपने नाटकों में व्यक्ति को सामयिक परिस्थितियों से ऊपर उठ सहज सम्भावनाओं के बीच देखा है। अपने ऐतिहासिक और समस्या प्रधान नाटकों में इन्होंने भूले बिसरे इतिहास को कल्पना के रंगों में उभार कर पुनः जीवित कर दिया है।

नाटक और रंगमंच

'नाटक' कहानी और उपन्यास की तरह पाठ्य पुस्तक मात्र नहीं है, बल्कि नाटक एक जीवंत अनुभव है, जो अपनी जीवन्तता सही अर्थों में रंगमंच पर ही प्राप्त करता है। रंगमंच को उसका निकष मानकर ही उसकी निजी सता की खोज सम्भव है। यदि रंगमंच की आत्मा नाटकीयता है तो नाटक की आत्मा रंगमंचीयता है।

नाटक एक त्रिकोण से आबद्ध है – नाटककार, निर्देशक और दर्शक, लेकिन अभिनेता और अन्य सारा समूह भी इसका अनिवार्य अंग है। अतः रंगमंच पर दृष्टिगोचर होने वाली नाट्य प्रक्रिया इनके सहयोग और सामंजस्य से ही सम्भव है। यहां पर यह सत्य भी स्पष्ट होता है कि जिस समय किसी देश का रंगमंच जितना विकसित होगा नाट्य रचना उसी प्रकार की रंगशालाओं के अनुरूप होगी। जैसे कालिदास और शेक्सपीयर के सामने अभिनय और निर्देशन की सशक्त परम्परा थी, रंगशाला का एक सुव्यवस्थित रूप था और नाटककार भी रंगशिल्प व अपने युग की अभिनय शैली से पूरी तरह परिचित थे।

मोहन राकेश का सारा नाट्य लेखन गहरे रंगानुभव से जुड़ा हुआ है। उन्होंने नाट्य लेखन में कलात्मक रंग तत्व की सही तलाश की है। राकेश के नाटकों ने हिन्दी रंगमंच को सक्रियता ही नहीं दी, नाटक को सही मायने में रंगमंच सं जोड़ा भी है। प्रचलित नाट्य रुढ़ियों को तोड़कर आधुनिक रंगमंच की कल्पना को भी साकार किया है।

कई बार नाटक पढ़ने पर भी फीका लगता है और अभिनीत देखने पर प्रभावित करता है। कई बार अच्छे से अच्छा नाटक भी रंगमंच पर आकर असफल हो जाता है, क्योंकि नाटक संश्लेषणात्मक कला होने के कारण विशिष्ट सन्तुलन की मांग करता है। नाटक में बिम्बों, ध्वनियों और प्रतीकों द्वारा भाषा की सूक्ष्म पकड़ का परिचय अन्य नाटककारों की भान्ति राकेश ने भी बड़ी सतर्कता से दिया है।

मोहन राकेश ने नाटक की मूल सत्ता की खोज भी की है। राकेश ने नाटककार की खुली दृष्टि, सहयोग–मनोवृति और नाटक की मौलिकता की समझ का परिचय दिया है। 'आषाढ़ का एक दिन' पहला नाटक है, जिससे रंगमंच की शक्ति और सम्भावनाओं को पहचानने वाला रंगकर्मियों का एक पूरा दल तैयार किया गया।

हिन्दी के नए नाटकों ने मोहन राकेश से विभिन्न रंग शैलियों को लिया और यह दृष्टि पैदा की कि एक ही नाटक पर भिन्न–भिन्न प्रयोग सम्भव है। हर नाटक के पीछे नाटककार की अपनी रंग कल्पना होती है। उसे खोजना, समझना समीक्षक का दायित्व है। नाटक पर विचार करते समय उसकी कथावस्तु, पात्र भाषा आदि पर सोचना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक रचना पद्धति को प्रभावित करने वाली

रंगमंच की रूढ़ियों और प्रदर्शन की शैलियों पर विचार करना। आधुनिक नाटकों में कथानक का विशेष होना प्रमुख बात नहीं है। राकेश के नाटकों का सौन्दर्य कथानक विशेष में नहीं, पात्रों की बातचीत और क्रियाओं में है जो नाटक को बनाते हैं। ज्यादा महत्वपूर्ण पात्र और संवाद ही हैं। पात्र ऐतिहासिक भी हो सकते हैं, पौराणिक भी या प्रतीक भी। कथानक को गढ़ने व बुनने में संवाद ही मुख्य होते हैं। राकेश मानते हैं कि संवादों के संक्षिप्त या लम्बे होने से उतना अन्तर नहीं पड़ता जितना कि उनके पीछे व्यापक नाट्यानुभूति होने से।

नाटककार और रंगमंच

साहित्य और अन्य कलाकृतियां हमें अपने आपको समझने में सहायता देती है। उनके माध्यम से अपने आपको देखकर हमारी अपने आप से पहचान घनिष्ठ है। साहित्य के माध्यम से जीवन का वास्तविक परिचय भले ही गहरी झुंझलाहट को जन्म दें; लेकिन व्यक्ति को आत्म–सन्तोष अवश्य ही प्राप्त होता है। राकेश का पूरा व्यक्तित्व साहित्यिक व्यक्तित्व से अलग नहीं था। यह बात दूसरी है कि सारा नाट्य लेखन गहरे रंगानुभव से जुड़ा होने के बावजूद भी वे अपने आपको उसका हिस्सा स्वीकार नहीं करते थे। इस का कारण मन की बाधा नहीं; बल्कि बाह्य परिस्थितियां हैं।

राकेश नाटककार के रंगमंच के सबसे बड़े समर्थक थे। वस्तुतः रंगमंच का सारा रूप विधान नाटककार का अपना होता है। कोई भी नाटककार रंग दृष्टि के अभाव में रचना नहीं कर सकता। स्वयं राकेश की भी अपनी एक रंग दृष्टि थी, जिसके द्वारा उन्होंने रंगमंच के बारे में नये सिरे से सोचने की शुरुआत की। उनके नाटकों की रंगक्षमता उन स्थितियों पर निर्भर करती है, जिनमें वे पात्र को भी खड़ा करते हैं। वे नाटक में दृश्य की अपेक्षा शब्द पर अधिक बल देते थे।

पश्चिम रंगमंच जिसमें दृश्य की क्षमता पर अधिक बल दिया जाता था, वह अब श्रीहीन होता जा रहा है। राकेश ने नाटक में जिस शब्द को स्थापित करने पर बल दिया है, वही रंगमंच की सही दिशा है। उन्होंने नाटक को दृश्य की अपेक्षा श्रव्य माध्यम माना है। दृश्यत्व के बावजूद भी नाटक में शब्द की आधारभूमि से इन्कार नहीं किया जा सकता, क्योंकि शब्द ही दृश्य को जन्म देते हैं, और दृश्य शब्द की सहचारिता में ही अर्थ ग्रहण करता है।

राकेश नाटक के मंचीकरण में नाटककार का एक महत्वपूर्ण योगदान मानते हैं। मंचीकरण की प्रक्रिया में नाटककार का अपना भी अधिकार होता है। किन्तु इसका अभिप्रायः यह नहीं कि नाटककार की मौजूदगी के बिना कोई नाटक खेला ही न जाए। राकेश के विचार से रंगमंच की पूरी प्रयोग प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत सम्मानित दर्शक बना रहे, न तो यह स्थिति स्वीकार्य है और न ही यह कि नाटककार की प्रयोगशीलता उसकी अपनी अलग चारदीवारी तक ही सीमित रहे व क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे अलग अपनी चारदीवारी तक।

अतः इन नाटकों को एक ही धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंगप्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बन कर रह सके।

नाटकः रचना–प्रक्रिया

प्रत्येक रचनाकार के लिए रचना मूल लक्ष्य होती है। राकेश की दृष्टि भी रचनाकार की है और रचना के अन्दर सत्य की तलाश उनमें सर्वत्र दिखाई देती है। कथावस्तु, चरित्र–सृष्टि, नाट्य स्थितियों सबकी उनके नाटकों में वैचारिक परिणीत दिखाई देती है। वे अपने भाव विचार और दृष्टि को जीवन के सम्पूर्ण चित्र के साथ मिला देते हैं। इसीलिए कहीं–कहीं राकेश अपने नाटकों में दार्शनिक मुद्रा भी धारण कर लेते हैं। यह दार्शनिक मुद्रा उनकी रचना दृष्टि की ही देन है। यही कारण है कि उनकी नाट्य कृतियां हृदय और बुद्धि दोनों अपेक्षाओं की ही पूर्ति करती है।

रचना प्रक्रिया में विचार करते हुए राकेश ने उसके अनुभूति पक्ष को ही अभिव्यक्त किया है। हर अनुभूति विचार को जन्म दे या न दे, किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त अवश्य होती है। यदि वह शब्दों में अभिव्यक्त न हो तो मुख मुद्रा व अन्य चेष्टाओं में अभिव्यक्त होती है। अनुभूति चाहे किसी भी रूप में अभिव्यक्त हो, उसका प्रभाव उसके आश्रय स्थान से बाहर भी रहता है। कोई व्यक्ति अनुभव के प्रभाव को अपने तक सीमित नहीं रख सकता।

स्वयं अपने अनुभव को बताते हुए उन्होंने लिखा है लेखन की इच्छा में जिस वस्तु का सबसे अधिक सरोकार होता है, वह यह है कि मैं नाटक लिखे बिना नहीं रह सकता। मेरे अन्दर और बाहर की शक्तियां ऐसी विवशता पैदा कर देती हैं, कि मैं अनेक कठिनाईयों के बावजूद भी लिखने बैठ जाता हूँ। यह केवल लिखने की विवशता नहीं, अपने आपको अभिव्यक्त और सम्प्रेषित करने की विवशता भी है। जो अपने आप में कम नाटकीय नहीं।

एक कलाकृति के आन्तरिक गुण की पहचान यही है कि उसमें सम्प्रषणीयता कितनी है। वह एक अनुभूति को कितनी ईमानदारी और तीव्रता के साथ सम्प्रेषित करने में समर्थ है। सामर्थ्य का निश्चय कला की मर्यादा को दृष्टि में रखकर ही होगा। वास्तव में कला की सृष्टि अनुभूति के सत्य को किसी तथाकथित कलात्मक रूप में ढलने के लिए नहीं, बल्कि अपनी मर्यादा से उसे व्यक्त करने के लिए है। उसकी सफलता मधुर प्रभाव की सृष्टि में नहीं, बल्कि वास्तविकप्रभाव के सम्प्रेषण में है।

मनुष्य और जीवन को परखने में सामाजिक परिस्थितियों में परखने व आंकने का आग्रह राकेश में बराबर रहा है। उन्होंने तेजी से बदलती हुई परिस्थितियों, बदलते जीवन मूल्यों को जाना। जीवन में बदलते मान–मूल्यों ने राकेश को यथार्थ दृष्टि दी। उनकी आस्था, अनास्था इसी यथार्थ बोध का परिणाम है। अनुभूति के मार्ग पर आने वाला छोटे से छोटा कण भी उन्हे प्रभावित करता है। वे हर घटना, दृश्य में सार्थक मानवीयता खोजना चाहते हैं।

राकेश में यथार्थ की परख जितनी गहरी होती गयी है, उनकी रचना दृष्टि में उतनी ही अधिक प्रामाणिकता आती गई है। समकालीन जीवन के स्वर उनके साहित्य में सुनाइ देते हैं।

इनके नाटक मानव का बहुत ही निराशाजनक बिम्ब उभारते हैं। वे नाटक के साथ ही जीवन का अन्त नहीं मानते। वास्तव में जहां नाटक समाप्त होता है, वहीं से जीवन का वास्तविक प्रारम्भ होता है।

नाटकः भाषा योजना

अभिव्यक्ति के लिए भाषा से उलझने की समस्या हर लेखक के सामने आती है। यह समस्या सिर्फ उन लोगों के सामने नहीं आती, जो चिन्तन और अनुभूति की दृष्टि से अन्दर से बिल्कुल साफ है। या कुछ अनुभूतियों व विचारों के दायरे में ही सोचते हैं। प्रायः ऐसे लोगों का भाषा की कोई समस्या नहीं सताती। अपने मन की हर बात के लिए उपयुक्त भाषा उन्हें आसानी से मिल जाती है।

नाट्य भाषा के सम्बन्ध में राकेश की स्पष्ट धारणा थी–'भाषा केवल शब्द योजना नहीं। भाषा की सजीव अर्थवता जोकि शब्दों की रुढ़ अर्थयुक्तता से अलग है, कुछ अंश तक ध्वनि, स्वराघात और शब्दों के विशिष्ट विन्यास पर निर्भर करती है। परन्तु मुख्य रूप से इस अर्थवता की उपलब्धि प्रयोग की ऐतिहासिकता, विचार और अनुभूति की आन्तरिक लय, तथा बिम्बों के संयोजन में लेखक की आन्तरिक अपेक्षा से होती है। भाषा का अर्थ साथ–साथ रखे गए शब्दों का सम्मिलित अर्थ ही नहीं, उस संयोजन से प्राप्त होने वाला एक और अर्थ भी है।

अपने विकास क्रम में प्रायः सभी भाषाओं ने दूसरी भाषाओं के शब्दों को आत्मसात किया है। कोई भी भाषा एक स्थिर, निश्चित और अन्तिम रूप में अवतरित नहीं होती, बल्कि समय के संस्कार से निरन्तर अपने आपको बदलती रहती है।

हिन्दी का जो रूप हम आज देखते हैं, जानते हैं, पिछले सौ वर्षों में ही कितना बदल गया है। बदलने के क्रम में ही कई शैलियां विकसित हुई हैं। हर जीवित भाषा निरन्तर एक संक्रमण की स्थिति में रहती है। यह उसके जीवित होने का ही प्रमाण है।

जैसे–जैसे अनुभव बदलते गये वैसे–वैसे भाषिक अभिव्यक्ति की स्थितियां भी बदलती गईं। बदलती हुई संवेदना के साथ एक नई भाषा की खोज होने लगी। एक ऐसी भाषा की खोज जिसमें युग की उन मनः स्थितियों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया जा सके, जो पूर्ववर्ती भाषा में ठीक से व्यक्त नहीं हो रही थी। नाटक के क्षेत्र में यह खोज कविता और कहानी के बाद में हुई है।

अभिप्रायः यह है कि पूर्ववर्ती परम्परा में नाटक साहित्य था। इसलिए नाटक की भाषा साहित्यिक मानी जाती थी। नाटककार साहित्यिक प्रभाव के लिए लिखते थे। किन्तु जब यह भाषा रंगमंच पर प्रयुक्त

होती थी तो प्रेक्षक और मंच के बीच एक दीवार खड़ी हो जाती थी। इसलिए राकेश ऐसी मंचीय भाषा की तलाशा में थे, जो समसामयिक प्रेक्षक के साथ सम्बन्ध स्थापित कर सके।

जिन लोगों ने अपने आपको इतिहास से बड़ा मानते हुए भाषा को व्यक्ति स्तर पर नई अर्थवता देने का प्रयास किया, वह बहुत जल्द अपने लिए वैसे ही छोटे–छोटे दायरे बना कर रह गए जैसे सहज–सरल अनुभूतियों को सहज भाषा में व्यक्त करने वालों के लिए पहले से ही बने हुए थे। जीवन के विविध रंगों को पहचानने का अवसर उन्होंने नहीं आने दिया।

राकेश की भाषा का स्तर साहित्यिक है किन्तु इसकी साहित्यिकता नाट्यानुभूति से भी जुड़ी हुई है, जो वास्तविक रंगानुभव प्रदान करती है। इन्होंने संस्कृत शब्दों की कलात्मक संगति बिठाई है। इनकें नाट्य भाषा में सृजनात्मकता है। यह वक्तव्य बन कर सामने नहीं आती बल्कि नाट्य स्थितियों के बीच ही पैदा होती है। राकेश के विचार से–'भाषा बोझिल और क्लिष्ट तब होती है, जब वह नाट्य स्थिति और रंगानुभव से विलग हो।

शब्दों के चुनाव की समस्या बहुत कुछ वस्तु की अपेक्षा पर भी निर्भर करती है। रचना का वस्तु पक्ष भी आज बहुत से शब्दों के आघात के लिए उत्तरदायी है। ऐसे अनेक शब्द हैं जो हमारी जनभाषा के अंग बन चुके हैं और साहित्यिक अभिव्यक्ति से उनका बहिष्कार करना जनभाषा का बहिष्कार करना है।

नाट्य भाषा के सम्बन्ध में राकेश की स्पष्ट धारणा थी कि भाषा केवल योजना नहीं, भाषा की सजीव अर्थवता जोकि शब्दों की रूढ़ अर्थयुक्तता से अलग है। कुछ अंश तक ध्वनि, स्वराघात और शब्दों के विशिष्ट विन्यास पर निर्भर करती है। परन्तु मुख्य रूप से इस अर्थवता की उपलब्धि प्रयोग की ऐतिहासिकता, विचार और अनुभूति की आन्तरिक लय, तथा बिम्बों के संयोजन में लेखक की आन्तरिक अपेक्षा से होती है। भाषा का अर्थ साथ–साथ रखे गए शब्दों का सम्मिलित अर्थ ही नहीं; उस संयोजन से प्राप्त होने वाला एक और अर्थ भी है।

नाटक में भाषा की वास्तविक पहचान संवाद के दायरे में ही होती है। इसलिए नाटक में संवाद से हटकर भाषा का सवाल ही नहीं उठता। राकेश अपने नाटकों में निर्दिष्ट प्रभाव के लिए शब्दों का इन्द्रजाल खड़ा कर देते हैं। शब्द के नाटकीय प्रयोग में उसकी अर्थवता का विस्तार राकेश की नाट्य भाषा और संवादों का महत्वपूर्ण गुण है।

नाट्यानुभूति नाट्य भाषा में ही सजीव होती है। यह भाषा यर्थाथ के जितनी समीप होगी, उतनी ही प्राणवान होगी। लेकिन यर्थाथ भाषा के नाम पर वह खीचड़ी भाषा को प्रश्रय नही देता बल्कि अक्षतर की भाषा पर बल देता है जिसे लय नियोजन में ही पाया जाता है। प्रयोग के स्तर पर मोहन राकेश ने अपने नाटकों में नवीन संवेदना के अनुरूप ही भाषा का संस्कार किया है। यह भाषा मूलतः द्वन्द्व और तनाव की ही भाषा है। इनकी भाषा अर्थ के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करती है। बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से मार्मिक अन्तरंग क्षणों का बोध कराती है।

राकेश रंगमंच में शब्द की अत्याधिक महत्ता स्वीकार करते थे। शब्द की क्षमता रंगमंच की एक बहुत बड़ी शक्ति होती है। यह शक्ति भाषा और संवाद पर निर्भर करती है। इन्होंने अपने नाटकों में भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग का परिचय दिया है और संवादों को नाट्य स्थिति के अनुरुप गढ़ा है। संवादों को एक विशिष्ट शिल्प में ढाल कर उन्हें व्यंजना वक्रता, धवन्यात्मकता तथा पाठ से भिन्न विशिष्ट अर्थ का गौरव प्रदान करते हैं। इस नई दिशा को संकेतिक करते हुए उन्होंने लिखा है– मुझे लगता है कि हमारें प्रयोगशील रंगमंच की वही दिशा हो सकती है, जो रंगमंच के शब्द और मानव पक्ष को समृद्ध बनाती है। यही रंगमंच में शब्दाकार का स्थान महत्वपूर्ण हो जाता है।

रंगमंच की शब्द निर्भरता का अर्थ रंगमंच में शब्द की आधारभूत भूमिका है। इस भूमिका का निर्वाह निश्चित सीमा में शब्दों के संयम से ही हो सकता है; इसके अतिरिक्त उपेक्षित प्रयोग से नहीं। बिना नाटकीय प्रयोजन के प्रयुक्त शब्दों से रंग सिद्धि सम्भव नहीं; क्योंकि बिम्ब को जन्म देने के साथ–साथ उस बिम्ब से संयोजित रहने की सम्भावना भी शब्दों में होनी आवश्यक है। राकेश ने शब्द के अर्थ और ध्वनि दोनों आयामों का स्वीकार करते हुए कहा है कि शब्द योजना अपनी आन्तरिक लय के बिना प्राणवान नहीं

हो सकती। लय और ध्वनि का संयोजन ही उसे अर्थवता प्रदान करता है और नाद के आरोह अवरोह में ही शब्द का आन्तरिक नाटक निहित है। इन्होंने लय और संसर्ग से अर्थ के अनेक आयाम उभारे हैं।

नाटक दृश्य काव्य होने के साथ एक शब्द माध्यम भी है। कथ्यों को दर्शक तक सम्प्रेषित करने में शब्द की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शब्द कथ्य को ही उजागर नहीं करता वरन् दृश्य और बिम्बों की रचना में भी सहायक होता है। शब्द मूलतः ध्वनि पर आधारित होता है। भाषा का लिखित रुप बहुत बाद में विकसित हुआ है और उसकी सुविधा के लिए ही शब्द की सता प्रतिष्ठित हुई।

यद्यपि राकेश रंगमंच पर शब्द को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील थे तथापि वह शब्द को रंगमंच पर थोपना नहीं चाहते थे। शब्दों का रंगमंच केवल शब्दाकार का रंगमंच नहीं हो सकता। शब्दाकार, परिचालक, अभिनेता इन सबके सहयोगी प्रयास से ही उसका अन्वेषण और परिसंस्कार किया जा सकता है।

राकेश ने शब्दों के बीच मौन का भी रंगमंचीय उपयोग किया है। जहां शब्द निरर्थक हो जाते हैं वहां मौन उनके नाटको में एक नाटकीय क्षण बन जाता है। वह ऐसा लम्बा शब्दहीन प्रयोग भी करते हैं जहां शब्द क्रिया में ढल जाता है। कहीं–कहीं ऐसी क्षणिक निःशब्दता का भी प्रयोग है, जो नाटकीय तनाव को वहन करने में समर्थ होता है और संवादों के अन्तराल पर निर्भर करता है। राकेश के विचार से शब्दों और ध्वनियों को नाट्कीय रंगमंच का आधार मानने का अर्थ बिम्ब का अस्वीकार नहीं है। अर्थ केवल इतना है कि इस माध्यम की आन्तरिक निरन्तरता शब्दों और ध्वनियों पर निर्भर करती है; उसी तरह जैसे सिनेमा में आन्तरिक निरन्तरता बिम्बों पर निर्भर करती है। वे संवाद को क्रिया व्यापार, दृश्य, मौन, बिम्ब आदि के साथ जोड़ने में सफल हुए हैं। संवाद की क्रिया से और क्रिया को नाटकीय अर्थ से जोड़ना राकेश के रंगभाषणों की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। कई अवसरों पर शब्द क्रिया में भी बदल जाते हैं। भावना अस्तित्व का रुप ले लेती है और शब्द बहुत पीछे छूट जाते हैं।

अन्ततः मोहन राकेश एक ऐसे साहित्यकार थे, जिन्होंने ढर्रे की अपर्याप्तता और अप्रासंगिकता को महसूस करते हुए अपने लिए एक नई राह बनाई। साहित्य की अलग–अलग विधाओं में उनका रचना कौशल, उनकी चिंतन शक्ति और अनुभूति का रुप सामने आ चुका है। इन्होंने अपने प्रयासों से नाटक, कहानी और उपन्यास को नयी जमीन दी है। राकेश ने बदलती हुई परिस्थितियों की चुनौतियों को जिस प्रकार वैयक्तिक स्तर पर झेला, उसी प्रकार साहित्यिक स्तर पर भी उन अनुभूतियों का साक्षात्कार किया है। आत्म–संघर्ष और रचना–संघर्ष की समानान्तरता से ही उनके साहित्य में सृजनात्मक धरातल सदा एक जैसा नहीं रहा। उनका सृजन, बोध और संवेदना के विभिन्न धरातलों पर आधारित है। धरातलों के बदलाव में ही उनके साहित्य के रचना परिप्रेक्ष्य और दृष्टि के क्रमिक विकास को देखा जा सकता है।

मोहन राकेश के नाटकों का मूल कथ्य अधूरेपन की यन्त्रणा ही है। इसी यन्त्रणा को उन्होंने अपने समस्त साहित्य में विभिन्न कोणों, स्तरों ओर आयामों में प्रस्तुत किया है। चुनौतियों को स्वीकार करने का एहसास अत्यन्त तीव्र और तीक्ष्ण था। इसलिए यह तनाव मात्र एक वैयक्तिक तनाव न होकर युग का तनाव है। वह सामाजिक चेतना को यर्थाथ की ही एक सीमा रेखा मानते थे।

राकेश ने अपने नाटकों में आधुनिक संवेदना की तीखी चुभन के बहु आयामी धरातलों को उभारने का प्रयत्न किया है। इनमें एक अंतरंगता और आत्मियता के साथ जीवन का अत्यन्त समीपी अंकन हुआ है। सम्बन्धों के उलझाव और व्यक्ति के बिखराव को उन्होंने अपने नाटकों में यर्थाथ रुप में उभारा है। अपने नाटकों में राकेश ने विषम पात्रों की सृष्टि के द्वारा भी तनाव की रचना की है।

राकेश ने नाटक में रंगशिल्प को विशेष महत्व दिया है। उन्होंने अपने समस्त नाटकों की रचना रंगमंच को दृष्टि में रखकर की है। आज के जीवन की सच्चाईयों और व्यक्ति की स्थिति को राकेश ने नाट्कीय बिम्बों में अनुभव के नये कोण और अन्दाज के नये पहलू के साथ उभारा है। यह अनुभव ओर अन्दाज आधुनिकता का बोध लिए हुए हैं। आज के युग में नर–नारी के बीच लुप्त होते सम्प्रेष्ण से उत्पन्न त्रासदी को जिस क्षमता के साथ राकेश ने अपने नाटकों को उभारा है, वह नाट्कीय प्रतिभा की परिचायात्मक होने के साथ–साथ नाटक की नयी सम्भावनाओं को भी उजागर करती है।

राकेश के साहित्य में केवल आज का परिवेश ही जीवन्त रुप में प्रस्तुत नहीं हुआ बल्कि आज के जीवन का समस्त परिप्रेक्ष्य भी उद्‌घाटित हुआ है। सार्थक सम्बन्धों की खोज मात्र कुछ सुविधाजनक स्थितियों को जुटा लेने के लिए नहीं बल्कि युग के सांस्कृतिक संकट से उभरने के लिए है। अतः मोहन राकेश मोहन की सुक्ष्म व नवीन कथ्य दृष्टि, शिल्प दृष्टि और भाषा दृष्टि साहित्य को एक सजीव, मौलिक, आधुनिक व जीवन्त रुप प्रदान करती है।

सहायक पुस्तकें

1. *गणपतिचन्द्र गुप्त : साहित्यिक निबन्ध।*
2. *गोविन्द चातक : आधुनिक नाटक का मसीहा : मोहन राकेश।*
3. *मोहन राकेश : साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि।*
4. *गिरिश रस्तोगी : मोहन राकेश ओर उनके नाटक।*